International Journal of Applied Research 2017; 3(1): 1022-1023

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(1): 1022-1023
www.allresearchjournal.com
Received: 17-11-2016
Accepted: 20-12-2016

डॉ. अरविन्द मैन्दोला
सह–आचार्य, चित्रकला, राजकीय महाविद्यालय, बून्दी, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अरविन्द मैन्दोला
सह–आचार्य, चित्रकला, राजकीय महाविद्यालय, बून्दी, राजस्थान, भारत

ईश्वर का कला संसार

डॉ. अरविन्द मैन्दोला

सारांशः
कला का प्रयोजन ईश्वर एवं कलाकार के बीच संबंध स्थापित करना रहा है और कला के सृजन में कलाकार ईश्वर का सहयोगी बन जाता है। ब्रह्माण्ड से लिखकर या नृत्य या चित्र द्वारा पुनःसजृन कर एक कलाकार ईश्वर के समकक्ष माना जा सकता है। समकालीन कलाकार इस पृथक ढंग से परिभाषित करते है, उनके अनुसार मानव स्वंय सृजनकर्ता है। अभिव्यक्ति मानव की सहज प्रवृति है अतः इसी प्रवृति के कारण आदिमानव ने चित्रों का कला संसार रचा।

मूल शब्दः– आदिम जातीय, क्रमबद्धता, आरण्यकगान, दृश्यमान, अन्तविरोध, ब्रह्माण्डीय, सृजनकर्ता, अधिष्ठाता, सत्यनिष्ठ।

प्रस्तावनाः
क्या मानव जन्म से कलाकार है? शायद हाँ और शायद नही। सभी पुरूष और स्त्री नृत्य, गायन, चित्रकारी में सक्षम है। समय विशेष पर व्यक्ति चित्रकारी जैसे मांड़ना, मेहंदी, रंग–रोगन, उत्सवों में नृत्य–गायन भी कर ही लेते है, परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि वे जन्मजात कलाकार या संगीतकार है। आंशिक रूप में सभी में अभिव्यक्ति के गुण विद्यमान होते है। किसी भी तरीके से चाहे कलात्मक रूप में ना सही, भाव–पक्ष के रूप में वे अभिव्यक्त भी होते रहते है।
वस्तुतः मनुष्य सीमित अर्थ में ही कलाकार है। वह ईश्वर की अनोखी अद्भूद एवं असीमित कला की ही नकल करता है। ऐसी धारणा संसार के समस्त आदिम जातीय मिथको के बहुत निकट है। अतः यह मानना ऐतिहासकि दृष्टि से भी सत्य के निकट होगा। माना जाता है कि मनुष्य नें पक्षियों का अनुकरण कर पत्तियों और तिनकों से घर बनाना, हाथी के पावों के देखकर खम्बों, सांपों के शरीर को देखकर लग्गा, भैंस के अस्थि–पजंर से छत बनाना सीखा।
यह सत्य है कि विचारो को विकास से अलग नही किया जा सकता है। परन्तु प्रथम कला या प्रथम कलाकार की उत्पत्ति के संबंध मे कई मिथक प्रचलित है, जैसे आस्ट्रेलियाई सृष्टि का आरम्भ अपने पूर्वजों के गीतों से मानते है, इनके अनुसार प्रारम्भिक अवस्था में पृथ्वी पर आदिपुरूष प्रकट हुये और मैं की हुक्कार भरते हुये चिल्लाना प्रारम्भ किया। तभी से शब्द या गीत का आरम्भ हुआ माना जाता है और तभी से आदिमानव के गीत समस्त विश्व में फैलते गये। इस प्रकार विश्व को गायन द्वारा अस्तित्व में लाने के कारण ये पूर्वज ''पोयसिस'' अर्थात सृजन के वास्तविक कवि थे। आस्ट्रैलियाई आदिवासी आज भी अपने पूर्वजों के गीत–मार्ग के पद चिन्हों पर चलकर तीर्थयात्रा करते है। ऐसी मान्यता है कि ये गीतों के बिना परिवर्तन कर सारी धरा पर फैलते गये। इस प्रकार गीतों से विश्व का अस्तित्व आदिमजातीय विश्वास है। आधुनिक एवं सभी परम्परागत विज्ञान इस मान्यता पर आधारित है कि भौतिक संसार क्रमबद्ध है। इस क्रमबद्धता की प्रथम कड़ी आदिमजातीय विश्लेषण में स्वर अथवा संगीतिक लहर है जो शून्य से उत्पन्न संसार के साधन और अभिव्यक्ति के क्रम में समस्त पृथ्वी पर फैली हुयी है। आस्ट्रेलियाई आदिम मानव के उपरोक्त उदाहरणों में एक भारतीय परम्परा की झलक है, जिससे हम कह सकते है कि ब्रह्माण्ड की उत्पति शब्द या स्वर तत्व से हुयी है और इसका सम्बंध ग्रामराग, ग्रामगेय, आरण्यकगान आदि से है।
ईश्वर को प्रथम कलाकार के रूप में देखने एवं कला को सृष्टि की प्रथम वस्तु मानने में कोई अर्न्तविरोध नही है। कला को कलाकार से अलग नही किया जा सकता है। कला की उत्पति सृष्टि से प्रारम्भ में हुयी या ईश्वर प्रथम कलाकार थे, लेकिन तब इसे अपरिवर्तनीय एवं स्थिर मानना होगा। क्या ऐसा है? अदृश्य स्थिर है, जबकि दृश्य जगत सतत् परिवर्तनीय रहता है। ईश्वर अविनाशी, सतत् और अदृश्य है परन्तु उसकी कला मानवीय चक्षु के द्वारा दृश्यमान है। अदृश्य को देखने हेतु एक विशेष प्रकार इन्द्रिय क्षमता की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के अनेकों संस्मरण हमें देखने–सुनने में आते रहते है।

क्या मानव कलाकार का कार्य भी ईश्वर का मूल कार्य ही है? पारम्परिक समाज और प्राचीन संस्कृतियो में प्रचलित मान्यताओं की दृष्टि से यह स्पष्ट समझा जा सकता है कि उड़ीसा के सांवरा और गुजरात के राठवा की जनजातियों में ईश्वर को प्रथम कलाकार माना है। कला स्वंय ईश्वरीय है, जबकि आदिम ने खुशी या आनन्द का अनुभव किया तो प्रथम बार उसने शिलाओं पर रेखा–चित्रों के द्वारा अपनी खुशी जाहिर की और उत्सव मनाया। प्रथम चित्रकार के रूप में स्वयं ईश्वर ने ब्रह्माण्ड का चित्रमय इतिहास लिखा। अतः राठवा, सांवरा, मनीपुर, बून्दी आदि की विषयवस्तु सीमित रही है और ब्रह्माण्ड का पुनः सृजन करती है। अतः हम कह सकते है कि कला का प्रयोजन ईश्वर एवं कलाकार बीच संबंध स्थापित करना रहा है और कला के सृजन में कलाकार ईश्वर का सहभागी बन जाता है।

सभी कलात्मक गतिविधियां सीधे आदिपूर्वजों से जुड़ी रही है । ईश्वर द्वारा चित्रित ब्रह्माण्ड को लिखकर या नृत्य या चित्र द्वारा पुनः सृजन कर एक कलाकार ईश्वर के समकक्ष माना जा सकता है। इस प्रकार आदिकालीन क्रिया एवं ब्रह्माण्डीय आदिस्वरूप को अधिक बल देने से आदिमजातियों की ब्रह्माण्डीय रचना की विशेष–क्षण की कला बन जाती है, जिस पर कलाकार की सभी कलाओं का अस्तित्व एवं विकास निर्भर है। सैद्धान्तिक रूप से स्पष्ट है कि कलाकार के संसार को अर्थ को प्रमाणित करने में आदिमकालीन दिव्य दृष्टि है।

समकालीन आधुनिक कलाकार इसे पृथक ढंग से परिभाषित करते है, उनका मानना है कि मानव स्वंय सृजनकर्ता है। अभिव्यक्ति मानव की सहज प्रवृत्ति के कारण आदिमानव ने चित्रों का संसार रचा।

आधुनिक कलाकार या समीक्षक स्थूल परिकल्पना से जुड़े हुये है और अपनी स्थूल कल्पना में ही कला की पूर्णता को तलाशते है। इनके अनुसार कला सिर्फ मनुष्य के लिये ही है। काल्पनिक कला को जो निश्चित करती है, उसे मानवीय सिद्धान्त (एन्थ्रोपिक प्रिंसिपल) कहते है, जिसके अनुसार अनुसार अनन्त ब्रह्माण्ड में कला की उत्पति और विकास का आवश्यक गुण सिर्फ मनुष्य में ही पाया जाता है। सत्यनिष्ठ कला का केन्द्र बिन्दु ब्रह्माण्ड है, जिसे हम '' ब्रह्माण्डीय'' संरचना कहते है।

ईश्वर को प्रथम कलाकार मानने वाले व्यक्ति यह भी मानते है कि ईश्वर कला का पारखी और प्रोत्साहक है। शास्त्रीय परम्परा के अनुसार ईश्वर जिस ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की, वही शब्द (वेद) के कलाकार है।

शिवनटराज संगीत व नृत्य के अधिष्ठाता एंव सरस्वती विद्या व संगीत की देवी है, विश्वकर्मा शिल्प के और श्रीकृष्ण सोलह कलाओं के देवता माने गये है। इसी प्रकार अनेक देवी–देवता कला की शक्ति का संरक्षण एंव प्रोत्साहन करते है। अतः मानव कलाकार इन देवताओं की पूजा करते है। देवताओं में जो कला निवास करती है या जिस कला के जो देवी–देवता है, वही प्रकृति में भी साम्य रखती है। इस सन्दर्भ में वास्तुपुरूष और संगीतपुरूष की शास्त्रों में उल्लेख पायें गये है। ऋग्वेद में संसार की सृष्टि–पुरूष की उत्पत्ति ब्रह्माण्डीय आदिपुरूष के शरीर से हुयी है। इसी प्रक्रिया से देवी शक्ति भी उत्पन्न हुयी। आदिपुरूष ने अपनी ''बलि'' दी ताकि सृष्टि की जा सके। इस आत्म बलिदान से ही जड़ (निर्जीव) और चेतन (सजीव) अस्तित्व में आयें। इसी से विभिन्न प्रकार के पशु–पक्षी, चारों वर्ण, ब्रह्माण्डीय शक्ति ऋचाऐं एवं संगीत, विभिन्न छन्द, सूर्य–चन्द्र, यक्षीय विधान आदि अस्तिव में आयें।

अतः कहा जा सकता है कि मनुष्य देवी कृपा से कला के प्राकृतिक रूप से प्रेरणा पाकर कला रचना करता है। कला मनुष्य की एक विशेष उपलब्धि है इसके लिये हमें देवीय–शक्तियों का आभार एवं नमन करना चाहिये। मानव निमित्त मात्र कार्य को अंजाम देता है। प्रेरणा स्त्रोत अनन्त शक्ति ही इसका मूलाधार है।

सन्दर्भः–

1. डॉ. रीता प्रतापः– भारतीय चित्रकला एवं मूर्त्तिकला का इतिहास
2. डॉ. जगदीश गुप्तः– प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला
3. कार्ल खण्डेलवालः– इण्डियन स्कल्पचर एण्ड पेन्टिग
4. विन्सेट स्मिथः– ए हिस्ट्री ऑफ फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सिलोन, केलड्रोन रामचन्द्र शुल्क, कला का दर्शन, करोना आर्ट, पब्लिशर्स, मेरठ